अनेकान्तवाद-विमर्श

जेण विणा लोगस्स वि ववहारो सव्वहा ण णिव्वडइ ।
तस्स भुवणेक्क-गुरुणो णमो अणेगंतवायस्स ।।

—आचार्य सिद्धसेन

'जिसके बिना लोकका भी व्यवहार किसी तरह नहीं चल सकता, उस लोकके अद्वितीय गुरु 'अनेकान्तवाद' को नमस्कार है ।'

यह उन सन्तोंकी उद्घोषणा एवं अमृत वाणी है, जिन्होंने अपना साधनामय समूचा जीवन परमार्थ-चिन्तन और लोककल्याणमें लगाया है । उनकी यह उद्घोषणा काल्पनिक नहीं है, उनकी अपनी सम्यक् अनुभूति और केवलज्ञानसे पूत एवं प्रकाशित होनेसे वह यथार्थ है । वास्तवमें परमार्थ-विचार और लोक-व्यवहार दोनोंकी आधार-शिला अनेकान्तवाद है । बिना अनेकान्तवादके न कोई विचार प्रकट किया जा सकता है और न कोई व्यवहार ही प्रवृत्त हो सकता है । समस्त विचार और समस्त व्यवहार इस अनेकान्तवादके द्वारा ही प्राण-प्रतिष्ठाको पाये हुए हैं । यदि उसकी उपेक्षा कर दी जाय तो वक्तव्य वस्तुके स्वरूपको न तो ठीक तरह कह सकते हैं, न ठीक तरह समझ सकते हैं और न उसका ठीक तरह व्यवहार ही कर सकते हैं । प्रत्युत, विरोध, उलझनें, झगड़े-फिसाद, रस्साकशी, वाद-विवाद आदि दृष्टिगोचर होते हैं, जिनकी वजहसे वस्तुका यथार्थ स्वरूप निर्णीत नहीं हो सकता । अतएव प्रस्तुत लेखमें इस अनेकान्तवाद और उसकी उपयोगितापर कुछ प्रकाश डाला जाता है ।

वस्तुका अनेकान्तस्वरूप—विश्वकी तमाम चीजें अनेकान्तमय हैं । अनेकान्तका अर्थ है नानाधर्म । अनेक यानी नाना और अन्त यानी धर्म और इसलिये नानाधर्मको अनेकान्त कहते हैं । अतः प्रत्येक वस्तुमें नानाधर्म पाये जानेके कारण उसे अनेकान्तमय अथवा अनेकान्तस्वरूप कहा गया है । यह अनेकान्तस्वरूपता वस्तुमें स्वयं है—आरोपित या काल्पनिक नहीं है । एक भी वस्तु ऐसी नहीं है जो सर्वथा एकान्तस्वरूप (एकधर्मात्मक) हो । उदाहरणार्थ यह लोक, जो हमारे व आपके प्रत्यक्षगोचर है, चर और अचर अथवा जीव और अजीव इन दो द्रव्योंसे युक्त है । वह लोकसामान्यकी अपेक्षा एक होता हुआ भी इन दो द्रव्योंकी अपेक्षा अनेक भी है और इस तरह वह अनेकान्तमय सिद्ध है । उसके एक जीवद्रव्यको ही लें । जीवद्रव्य जीवद्रव्य-सामान्यकी दृष्टिसे एक होकर भी चेतना, सुख, वीर्य आदि गुणों तथा मनुष्य, तिर्यंच, नारकी, देव आदि पर्यायोंकी समष्टि रूप होनेकी अपेक्षा अनेक है और इस प्रकार जीवद्रव्य भी अनेकान्तस्वरूप प्रसिद्ध है । इसी तरह लोकके दूसरे अवयव अजीवद्रव्यकी ओर ध्यान दें । जो शरीर सामान्यकी अपेक्षासे एक है वह रूप, रस, गन्ध, स्पर्शादि गुणों तथा बाल्यावस्था, किशोरावस्था, युवावस्था, वृद्धावस्था आदि क्रमवर्ती पर्यायोंका आधार होनेसे अनेक भी है और इस तरह शरीरादि अजीवद्रव्य भी अनेकान्तात्मक सुविदित है । इस प्रकार जगत्का प्रत्येक सत् अनेकधर्मात्मक (गुणपर्यायात्मक, एकानेकात्मक, नित्यानित्यात्मक आदि) स्पष्टतया ज्ञात होता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और भी देखिए। जो जल प्यासको शान्त करने, खेतीको पैदा करने आदिमें सहायक होनेसे प्राणियों-का प्राण है—जीवन है वही बाढ़ लाने, डूबकर मरने आदिमें कारण होनेसे उनका घातक भी है। कौन नहीं जानता कि अग्नि कितनी संहारक है, पर वही अग्नि हमारे भोजन बनाने आदिमें परम सहायक भी है। भूखेको भोजन प्राणदायक है, पर वही भोजन अजीर्ण वाले अथवा टाइफाइडवाले बीमार आदमीके लिये विष है। मकान, किताब, कपड़ा, सभा, संघ, देश आदि ये सब अनेकान्त ही तो हैं। अकेली ईंटों या चूने-गारेका नाम मकान नहीं है। उनके मिलापका नाम ही मकान है। एक-एक पन्ना किताब नहीं है नाना पन्नोंके समूहका नाम किताब है। एक-एक सूत कपड़ा नहीं कहलाता। ताने-बाने रूप अनेक सूतोंके संयोगको कपड़ा कहते हैं। एक व्यक्तिको कोई सभा या संघ नहीं कहता। उनके समुदायको ही समिति, सभा, संघ या दल आदि कहा जाता है। एक-एक व्यक्ति मिलकर जाति, और अनेक जातियाँ मिलकर देश बनते हैं। जो एक व्यक्ति है वह भी अनेक बना हुआ है। वह किसीका मित्र है, किसीका पुत्र है, किसीका पिता है, किसीका पति या या स्त्री है, किसीका मामा या भांजा है, किसीका ताऊ या भतीजा है आदि अनेक सम्बन्धोंसे बंधा हुआ है। उसमें ये सम्बन्ध काल्पनिक नहीं हैं, यथार्थ हैं। हाथ, पैर, आँखें, कान ये सब शरीरके अवयव ही तो हैं और उनका आधारभूत अवयवी शरीर है। इन अवयव-अवयवी स्वरूप वस्तुको ही हम सभी शरीरादि कहते व देखते हैं। कहनेका तात्पर्य यह है कि यह सारा ही जगत् अनेकान्तस्वरूप है। इस अनेकान्तस्वरूपको कहना या मानना अनेकान्तवाद है।

अनेकान्तस्वरूपका प्रदर्शक स्याद्वाद

भगवान् महावीर और उनके पूर्ववर्ती ऋषभादि तीर्थंकरोंने वस्तुको अनेकान्तस्वरूप साक्षात्कार करके उसका उपदेश दिया और परस्पर विरोधी-अविरोधी अनन्त-धर्मात्मक वस्तुको ठीक तरह समझने-समझानेके लिए वह दृष्टि भी प्रदान की जो विरोधादिके दूर करनेमें एकदम सक्षम है। वह दृष्टि है स्याद्वाद, जिसे कथंचित्वाद अथवा अपेक्षावाद भी कहते हैं। इस स्याद्वाद-दृष्टिसे ही हम उस अनन्तधर्मा वस्तुको ठीक तरह जान सकते हैं। कौन धर्म किस अपेक्षासे वस्तुमें निहित है, इसे हम, जब तक वस्तुको स्याद्वाद दृष्टिसे नहीं देखेंगे, नहीं जान सकते हैं। इसके सिवा और कोई दृष्टि वस्तुके अनेकान्तस्वरूपका निर्दोष दर्शन नहीं करा सकती है। वस्तु जैसी है उसका वैसा ही दर्शन करानेवाली दृष्टि अनेकान्तदृष्टि अथवा स्याद्वाददृष्टि ही हो सकती है, क्योंकि वस्तु स्वयं अनेकान्तस्वरूप है। इसीसे वस्तुके स्वरूप-विषयमें "**अर्थोऽनेकान्तः। अनेके अन्ता धर्मा सामान्य-विशेष-गुण-पर्याया यस्य सोऽनेकान्तः**" यों कहा गया है। दूसरी दृष्टियाँ वस्तुके एक-एक अंशका दर्शन अवश्य कराती हैं। पर उस दर्शनसे दर्शकको यह भ्रम एवं एकान्त आग्रह हो जाता है कि वस्तु इतनी मात्र ही है और नहीं है। इसका फल यह होता है कि शेष धर्मों या अंशोंका तिरस्कार हो जाने-के कारण वस्तुका पूर्ण एवं सत्य दर्शन नहीं हो पाता। स्याद्वाद-तीर्थके प्रभावक आचार्य समन्तभद्रस्वामीने अपने स्वयम्भूस्तोत्रमें इसी बातको निम्न प्रकार प्रकट किया है :—

य एव नित्य-क्षणिकादयो नया मिथोऽनपेक्षाः स्वपर-प्रणाशिनः।
त एव तत्त्वं विमलस्य ते मुनेः परस्परेक्षाः स्वपरोपकारिणः॥

'यदि नित्यत्व, अनित्यत्व आदि परस्पर निरपेक्ष एक-एक ही धर्म वस्तुमें हों तो वे न स्वयं अपने अस्तित्वको रख सकते हैं और न अन्यके। यदि वे ही परस्पर सापेक्ष हों—अन्यका तिरस्कार न करें—तो हे विमल जिन! वे अपना भी अस्तित्व रखते हैं और अन्य धर्मोंका भी। तात्पर्य यह कि एकान्तदृष्टि तो स्वपरघातक है और अनेकान्त-दृष्टि स्वपरोपकारक है।'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसी आशयसे उन्होंने स्पष्टतया यह भी बतलाया है कि वस्तुमें एकान्ततः नित्यत्व और एकान्ततः अनित्यत्व अपने अस्तित्वको क्यों नहीं रख सकते हैं? वे कहते हैं कि 'सर्वथा नित्य पदार्थ न तो उत्पन्न हो सकता है और न नाश हो सकता है, क्योंकि उसमें क्रिया और कारकको योजना सम्भव नहीं है। इसी तरह सर्वथा अनित्य पदार्थ भी, जो अन्वयरहित होनेसे प्रायः असत्रूप ही है, न उत्पन्न हो सकता है और न नष्ट हो सकता है, क्योंकि उसमें भी क्रिया और कारककी योजना असम्भव है। इसी प्रकार सर्वथा असत्का उत्पाद और सत्का नाश भी सम्भव नहीं है, क्योंकि असत् तो अन्वय-शून्य है और सत् व्यतिरेकशून्य है और इन दोनोंके बिना कार्यकारणभाव बनता नहीं। **'अन्वयव्यतिरेक-समधिगम्यो हि कार्यकारणभावः'** यों सर्व सम्मत सिद्धान्त है। अतः वस्तुतत्त्व 'यह वही है' इस प्रकारकी प्रत्यभिज्ञा-प्रतीति होनेसे नित्य है और 'यह वह नहीं है—अन्य है' इस प्रकारका ज्ञान होनेसे अनित्य है और ये दोनों नित्यत्व तथा अनित्यत्व वस्तुमें विरुद्ध नहीं है, क्योंकि वह द्रव्यरूप अन्तरंग कारणकी अपेक्षासे नित्य है और कालादि बहिरंग कारण तथा पर्यायरूप नैमित्तिक कार्यकी अपेक्षासे अनित्य है। यथा—

न सर्वथा नित्यमुदेत्यपैति न च क्रियाकारकमत्र युक्तम्।
नैवाऽसतो जन्म सतो न नाशो दीपस्तमः पुद्गलभावतोऽस्ति ॥२४॥
नित्यं तदेवेदमिति प्रतीतेर्न नित्यमन्यत् प्रतिपत्तिसिद्धेः।
न तद्विरुद्धं बहिरन्तरङ्गनिमित्त-नैमित्तिक-योगतस्ते ॥४३॥

आगे इसी ग्रन्थमें उन्होंने अरजिनके स्तवनमें और भी स्पष्टताके साथ अनेकान्तदृष्टिको सम्यक् और एकान्त-दृष्टिको स्व-घातक कहा है :—

अनेकान्तात्मदृष्टिस्ते सती शून्यो विपर्ययः।
ततः सर्वं मृषोक्तं स्यात्तदयुक्तं स्वघाततः ॥१८॥

'हे अर जिन! आपकी अनेकान्तदृष्टि समीचीन है—निर्दोष है, किन्तु जो एकान्तदृष्टि है वह सदोष है। अतः एकान्तदृष्टिसे किया गया समस्त कथन मिथ्या है, क्योंकि एकान्तदृष्टि बिना अनेकान्तदृष्टिके प्रतिष्ठित नहीं होती और इसलिये वह अपनी ही घातक है।'

तात्पर्य यह कि जिस प्रकार समुद्रके सद्भावमें ही उसकी अनन्त बिन्दुओंकी सत्ता बनती है और उसके अभावमें उन बिन्दुओंकी सत्ता नहीं बनती उसी प्रकार अनेकान्तरूप वस्तुके सद्भावमें ही सर्व एकान्त दृष्टियाँ सिद्ध होती हैं और उसके अभावमें एक भी दृष्टि अपने अस्तित्वको नहीं रख पाती। आचार्य सिद्धसेन अपनी चौथी द्वात्रिंशिकामें इसी बातको बहुत ही सुन्दर ढंगसे प्रतिपादन करते हैं :—

उदधाविव सर्वसिन्धवः समुदीर्णास्त्वयि सर्वदृष्टयः।
न च तासु भवानुदीक्ष्यते प्रविभक्तासु सरित्स्ववोदधिः ॥—(४-१५)

'जिस प्रकार समस्त नदियाँ समुद्रमें सम्मिलित हैं उसी तरह समस्त दृष्टियाँ अनेकान्त-समुद्रमें मिली हैं। परन्तु उन एक-एकमें अनेकान्तका दर्शन नहीं होता। जैसे पृथक्-पृथक् नदियोंमें समुद्र नहीं दिखता।'

अतः हम अपने स्वल्प ज्ञानसे अनन्तधर्मा वस्तुके एक-एक अंशको छूकर ही उसमें पूर्णताका अहंकार 'ऐसी ही है' न करें, उसमें अन्य धर्मोंके सद्भावको भी स्वीकार करें। यदि हम इस तरह पक्षाग्रह छोड़कर वस्तुका दर्शन करें तो निश्चय ही हमे उसके अनेकान्तात्मक विराट् रुपका दर्शन हो सकता है। समन्तभद्र स्वामी युक्त्यनुशासनमें यही कहते हैं :—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकान्तधर्माऽभिनिवेश-मूला रागादयोऽहंकृतिजा जनानाम् ।
एकान्त-हानाच्च स यत्तदेव स्वाभाविकत्वाच्च समं मनस्ते ॥५१॥

'एकान्तके आग्रहसे एकान्तीको अहंकार हो जाता है और उस अहंकारसे उसे राग, द्वेष, पक्ष आदि हो जाते हैं, जिनसे वह वस्तुका ठीक दर्शन नहीं कर पाता। पर अनेकान्तीको एकान्तका आग्रह न होनेसे उसे न अहंकार पैदा होता है और न उस अहंकारसे रागादिकको उत्पन्न होनेका अवसर मिलता है और उस हालतमें उसे उस अनन्तधर्मा वस्तुका सम्यग्दर्शन होता है; क्योंकि एकान्तका आग्रह न करना—दूसरे धर्मोंको भी उसमें स्वीकार करना सम्यग्दृष्टि आत्माका स्वभाव है और इस स्वभावके कारण ही अनेकान्तीके मनमें पक्ष या क्षोभ पैदा नहीं होता—वह समताको धारण किये रहता है।'

अनेकान्तदृष्टिकी जो सबसे बड़ी विशेषता है वह है सब एकान्तदृष्टियोंको अपनाना—उनका तिरस्कार नहीं करना—और इस तरह उनके अस्तित्वको स्थिर रखना। आचार्य सिद्धसेनके शब्दोंमें हम इसे इस प्रकार कह सकते हैं—

भद्दं मिच्छादंसण-समूह-मइयस्स अमयसारस्स ।
जिणवयणस्स भगवओ संविग्गसुहाहिगम्मस्स ॥

'ये अनेकान्तमय जिनवचन मिथ्यादर्शनों (एकान्तों) के समूह रूप हैं—इसमें समस्त मिथ्यादृष्टियाँ (एकान्तदृष्टियाँ) अपनी-अपनी अपेक्षासे विराजमान हैं और अमृतसार या अमृतस्वादु हैं। वे संविग्न—रागद्वेषरहित तटस्थ वृत्तिवाले जीवोंको सुखदायक एवं ज्ञानोत्पादक हैं। वे जगत्के लिये भद्र हों—उनका कल्याण करें।'

बन्ध, मोक्ष, आत्मा-परमात्मा, लोक-परलोक, पुण्य-पाप आदिकी सम्यक् व्यवस्था अनेकान्तमान्यतामें ही बनती है—एकान्तमान्यतामें नहीं। इसीसे समन्तभद्र स्वामीको देवागममें कहना पड़ा है कि—

कुशलाऽकुशलं कर्म परलोकश्च न क्वचित् ।
एकान्त-ग्रह-रक्तेषु नाथ स्वपरवैरिषु ॥

'नित्यत्वादि किसी भी एकान्तमें पुण्य-पाप, परलोक, इहलोक आदि नहीं बनते हैं, क्योंकि एकान्तका अस्तित्व अनेकान्तके सद्भावमें ही बनता है और अनेकान्तके न माननेपर उनका वह एकान्त भी स्थिर नहीं रहता और इस तरह वे अपने तथा दूसरेके वैरी—अकल्याणकर्त्ता हैं।'

इन्हीं सब बातोंसे आचार्य समन्तभद्रने भगवान् वीरके शासनको, जो अनेकान्तसिद्धान्तकी भव्य एवं विशाल आधारशिलापर निर्मित हुआ है और जिसकी बुनियाद अत्यन्त मजबूत है, '**सर्वोदय तीर्थ**—सबका कल्याण करने वाला तीर्थ कहा है—

सर्वान्तवत्तद्गुण-मुख्य-कल्पं सर्वान्त-शून्यं च मिथोऽनपेक्षम् ।
सर्वाऽऽपदामन्तकरं निरन्तं सर्वोदयं तीर्थमिदं तवैव ॥६१॥

—युक्त्यनुशासन

'हे वीर जिन! आपका तीर्थ—शासन समस्त धर्मों—सामान्य-विशेष, द्रव्य-पर्याय, विधि-निषेध, एक-अनेक, नित्यत्व-अनित्यत्व आदिसे युक्त है और गौण तथा मुख्यकी विवक्षाको लिये हुए है—एक धर्म मुख्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है तो दूसरा धर्म गौण है। किन्तु अन्य तीर्थ—शासन निरपेक्ष एक-एक नित्यत्व या अनित्यत्य आदिका ही प्रतिपादन करनेसे समस्त धर्मों—उस एक-एक धर्मके अविनाभावी शेष धर्मोंसे शून्य हैं और उनके अभावमें उनके अविनाभावी उस एक-एक धर्मसे भी रहित हैं। अतः आपका ही अनेकान्तशासनरूप तीर्थ सर्व दुःखोंका अन्त करनेवाला है, किसी अन्यके द्वारा अन्त (नाश) न होने वाला है और सबका कल्याणकर्ता है।'

आचार्य अमृतचन्द्रके शब्दोंमें हम इस 'अनेकान्त' को, जिसे 'सर्वोदयतीर्थ' कहकर उसका अचिन्त्य माहात्म्य प्रकट किया गया है, नमस्कार करते और मंगलकामना करते हैं कि विश्व इसकी प्रकाशपूर्ण एवं आह्लादजनक शीतल छायामें आकर सुख-शान्ति एवं सद्दृष्टि प्राप्त करे।

परमागमस्य बीजं निषिद्ध-जात्यन्ध-सिन्धुर-विधानम्।
सकल-नय-विलसितानां विरोधमथनं नमाम्यनेकान्तम्॥

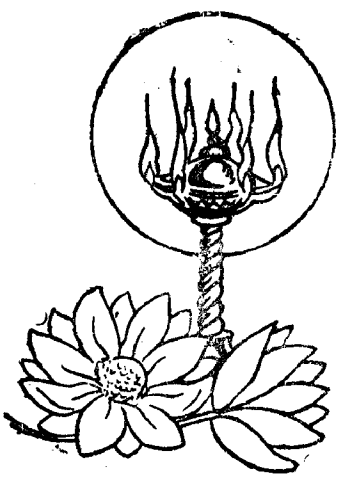

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org